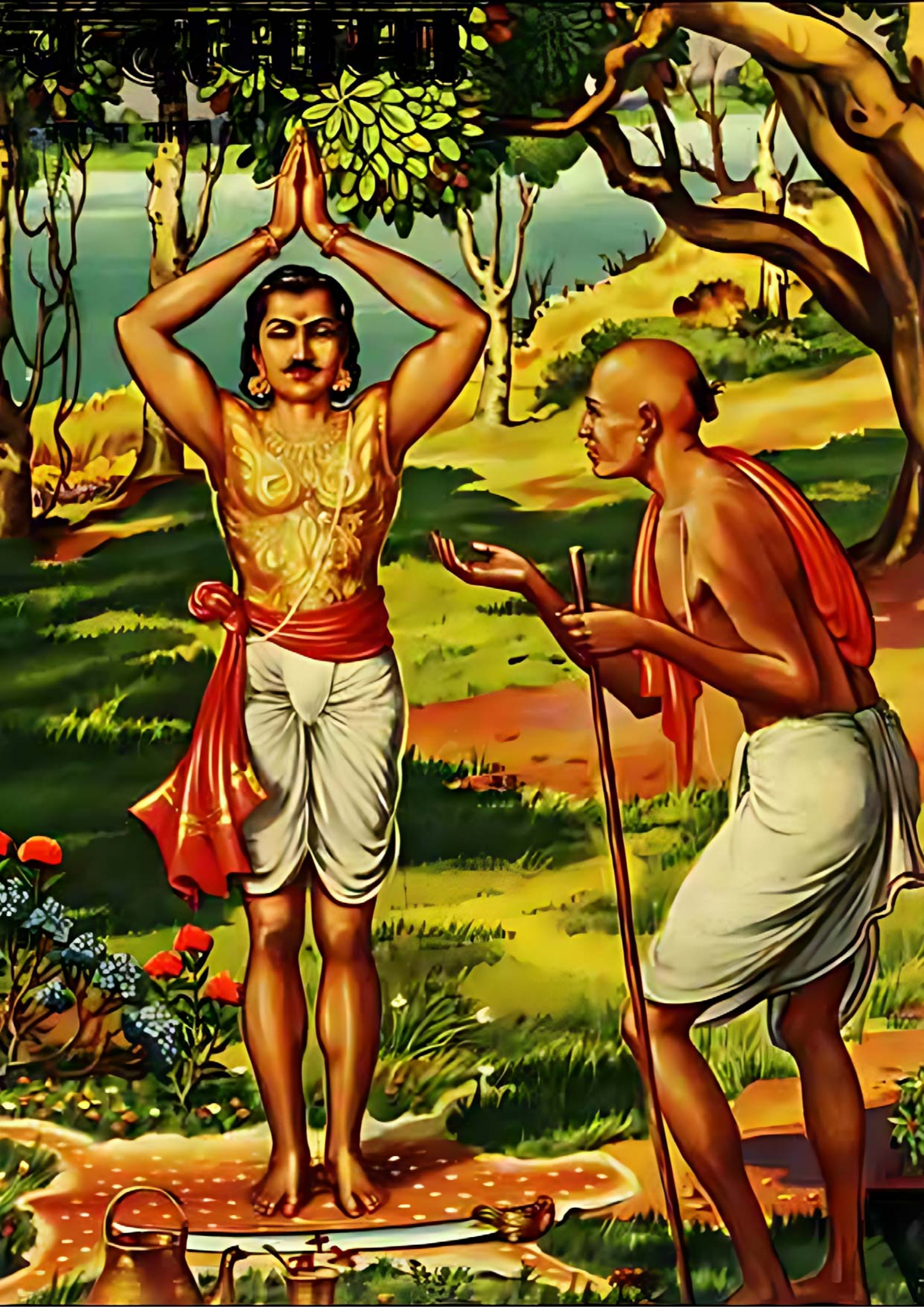




तब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। काशी के कुछ दूरी पर एक बढ़इयों का गाँव था। सैकड़ों बढ़ई उसमें रहा करते थे। वे छोटी छोटी नौकाओं में बैठकर जङ्गल जाया करते, और वहाँ पेड़ काटकर शहतीर बनाकर लाया करते। जब लकड़ी ख़तम हो जाती तो वे फिर जङ्गल जाकर काटकर ले आते। बहुत पहले से उनका यही क्रम चल आ रहा था।

उस जङ्गल के एक कोने में एक हथिनी रहा करती थी। एक दिन उसके पैर में एक लकड़ी चुभ गई। उसका पैर सूज गया और दुखने लगा। बहुत कोशिश की पर वह लकड़ी न निकल पाई। इतने में उसको बढ़इयों के पेड़ काटने का शब्द सुनाई दिया। वह भी लङ्गड़ाती लङ्गड़ाती उन लोगों के पास गई। हथिनी को देखते ही वे जान गये कि उसे कहीं दर्द हो रहा था। वे अपना काम छोड़कर, उसकी तरफ आ गये। हथिनी उनके सामने लेट गई। आखिर उसके सूजे पैर को देखकर उन्होंने सोचा कि ज़रूर उसको कुछ चुभ गया है। छेनी वगैरह से सावधानी से उन्होंने लकड़ी बाहर निकाल दी। घाव की मरहम पट्टी भी कर दी। हथिनी को आराम मिला।

जल्दी ही हथिनी का पैर ठीक हो गया। तब से हथिनी भी उनकी मदद करने लगी। वह काटे हुए पेड़ों को खींचकर ले आती, तनों को इधर उधर फेंकती। शहतीरों को ढ़केलकर नावों के पास ले जाती।

इस तरह हर साल हथिनी और बढ़इयों का लगाव बढ़ता गया। वहाँ पाँच सौ बढ़ई थे, और वे अपने भोजन का कुछ



न कुछ भाग बचाकर, हथिनी को खिलाते। इसी से वह सन्तुष्ट थी।

कुछ दिनों बाद उस हथिनी के बच्चा पैदा हुआ। वह ऐरावत जाति का था। उसका रङ्ग भी सफ़ेद था। जब हथिनी बूढ़ी हो गई, तो वह अपने बच्चे को लाकर बढ़इयों को सौंप गई, और स्वयं जङ्गल में चली गई। यह सफेद हाथी भी बढ़इयों की मदद करता, उनके दिये हुए भोजन को खाता, उनके बच्चों को अपनी पीठ पर सवारी कराता। नदी में नहाता- धोता ।.... यों वह बड़े मज़े में अपना समय काट रहा था। बढ़ई भी उसका बड़े प्रेम से पालन-पोषण किया करते।

यह जानकर कि जङ्गल में एक सफेद हाथी है, उसको पकड़ने के लिए, नौकर-चाकर सहित ब्रह्मदत्त जङ्गल में आया। राजा को देखकर बढ़इयों ने सोचा कि वह लकड़ी के लिये आया है। इसलिये उन्होंने कहा-"महाराज! आपको कष्ट करके यहाँ आने की क्या जरूरत थी? अगर आपको लकड़ी चाहिये थी तो हम ही लाकर आपको राजमहल में दे देते।"

"मैं लकड़ी के लिये नहीं आया हूँ। मैं इस सफेद हाथी के लिये आया हूँ।" राजा ने कहा।

" तो ले जाइये....." बढ़इयों ने कहा।

पर हाथी वहाँ से न हिला। राजा के साथ आये हुए एक व्यक्ति ने कहा-"महराज! यह अक्लमन्द जानवर है। अगर आप उसे ले गये तो इन बढ़इयों का नुकसान होगा। जब तक उनको आप हरजाना नहीं देंगे तब तक वह यहाँ से नहीं हिलेगा।"

राजा ने हाथी के चार पैरों के पास, सूँड़ के पास, पूँछ के पास एक एक लाख रुपया रखा, और बढ़इयों को उसको लेने

के लिये कहा। तब भी हाथी न हिला। जब बढ़इयों की माँ-बहनों और बाल-बच्चों को कपड़े आदि, भेंट दिये गये, तब वह हाथी वहाँ से हिला।

हाथी को बाजे-गाजे बजाते हुए ले जाया गया। उसका नगर के कोने कोने में जुलूस निकाला गया। उसके लिए एक अलग घर बनाया गया। हाथियों में वह सब से बड़ा माना जाने लगा। केवल राजा ही उस पर सवारी किया करता।

उस हाथी के आने के बाद, काशी के क्षेत्रफल का बहुत विस्तार हुआ। उसके प्रभाव के कारण बड़े बड़े बलशाली भी काशी राजा के द्वारा पराजित किये गये।

कुछ दिनों बाद राजा के पत्नी को गर्भ हुआ। उसके गर्भ में बोधिसत्व ने प्रवेश किया। रानी के प्रसव का एक सप्ताह था कि राजा की मृत्यु हो गई। उसी समय कोशल देश के राजा ने अपनी सेनाओं के साथ काशी पर आक्रमण किया। ऐसी हालत में काशी राज्य के मन्त्रियों को कुछ न सूझा कि क्या किया जाय। उन्होंने आपस में बहुत देर तक सलाह-मशवरा कर कोशल देश के



राजा के पास यह खबर भेजी- "हमारी रानी एक सप्ताह में बच्चे को जन्म देनेवाली है। अगर वह लड़की हुई तो आप आकर काशी पर कब्जा कर लीजिये अगर लड़का हुआ तो हम आप से युद्ध करेंगे।" कोशल राजा ने यह खबर पाकर एक सप्ताह की अवधि दी।

एक सप्ताह बाद रानी ने बोधिसत्व को जन्म दिया। कशी राज्य की सेनाएँ, कोशल देश की सेनाओं से युद्ध में भिड़ पड़ीं। पर कोशल की सेनाएँ ही अधिक ताकतवर मालूम होती थीं। तब मन्त्रियों ने महारानी के पास जाकर कहा -"महारानी!

जब तक हमारा सफेद हाथी युद्ध में नहीं जाता तब तक हमारी विजय न होगी। परन्तु महाराजा की मृत्यु के बाद से हाथी ने खाना-पीना सब छोड़ दिया है। बड़ा दुःखी है। अब क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता।" यह सुनते ही रानी अपने पलङ्ग पर से उठी। लड़के को राजा की पोशाक पहनाई, और उसको लेकर हाथी के पास गई। उसने लड़के को हाथी के पैरों के सामने रखकर, नमस्कार कर कहा- "गजराज! अपने मालिक के मर जाने पर तुम शोक न करो। यह लो, यह तुम्हारा मालिक है। इसके शत्रु युद्ध में मैदान मार रहे हैं। तुम जाकर उन्हें हराओ; नहीं तो अपने पैरों से इस लड़के को कुचल दो।"

तब तक हाथी शोकातुर था। पर यह सुनते ही वह अपनी सूँड़ से लड़के के शरीर को पुचकारने लगा। उसको सूँड़ से उठाकर अपने सिर पर रख लिया। फिर उसको माँ के हाथों में रखकर वह युद्ध क्षेत्र की ओर चला गया।

जब बिजली की तरह गरजते हुए हाथी को अपनी ओर लपकते देखा तो कोशल देश के सैनिकों का साहस जाता रहा। वे इधर उधर अन्धाधुन्ध भागने लगे। हाथी सीधा कोशल देश के राजा के पास गया। उसको सूँड़ में लेपटकर राजकुमार के पास ले गया। कोशल देश का राजा बच्चे के पाँव पड़ा। क्षमा माँगने लगा। काशी के मन्त्रियों का उसने कुछ न बिगाड़ा। इसलिए उसको क्षमा कर, सकुशल उसके देश में उसको पहुँचा दिया।

जब तक बोधिसत्व सात वर्ष का न हो गया, तब तक हाथी काशी की रक्षा करता रहा। बोधिसत्व ने भी सिंहासन पर चढ़ने पर उसका मुख्य हाथी के रूप में आदर किया।





किसी जमाने में एक गुरु के यहाँ कई शिष्य दूर दूर से विद्या पढ़ने के लिए आकर रहा करते थे। एक बार गुरु के घर में ईन्धन खतम हो गया। इसलिए शिष्य पासवाले जङ्गल में लकड़ियाँ चुनने गये।

उनमें से एक बड़ा आलसी था। वह जब तक बाधित न किया जाता, तब तक कोई काम न करता। अगर काम करना भी पड़ जाता, तो कम से कम काम करने की कोशिश करता। क्योंकि शिष्य काफी थे, इसलिए कोई यह जान नहीं पाता था कि उस आलसी ने कितना काम किया था। अलावा इसके वह शिष्य बड़ा अक्लमन्द भी था। वह किसी को यह पता नहीं लगने देता था कि वह काम चोर था।

जङ्गल में घुसकर, सूखी लकड़ियों ढूँढ़ने और इकट्ठा करने में शिष्य मगन हो गये। आलसी को यह काम व्यर्थ-सा लगा। इधर उधर घूम-फिर कर अपने को थकाना भी नहीं चाहता था। इसलिए वह दूसरों से अलग चला गया। उसका ख्याल था कि कहीं न कहीं तो कोई सूखा पेड़ दिखाई देगा ही। उसके थोड़ी दूर जाने पर एक ऐसा पेड़ दिखाई भी दिया। उस पेड़ पर एक भी पत्र न था। पेड़ की खाल भी काली थी। काम-चोर ने सोचा कि वह पेड़ सूखा ही था। अब कहीं जाने की जरूरत ही नहीं है।

"इस एक पेड़ को ले जाना काफी है। कई दिन काम आयेगा।" यह सोच वह साया में सो गया। जब वह सोने को तैयार हो रहा था, उसे बाकी शिष्यों का बातें करना, हँसना सुनाई पड़ रहा था। पर जब वह सोकर उठा तो चारों ओर

श्रीमती रमा शुक्ल

निस्तब्धता थी। काफी समय भी हो गया था।

कामचोर घबरा गया। वह जान गया कि साथ के शिष्य लकड़ियों के गठ्ठर उठाकर ले गये थे। उसने सामने के पेड़ से दो-चार टहनियाँ तोड़ लीं और उनका गठ्ठर बाँध कर, सिर पर रख घर की ओर भागा। जब वह गुरु के घर पहुँचा तो बाकी शिष्य पहुँच चुके थे, और उन्होंने अपनी लकड़ियाँ भी एक जगह इकट्ठी कर दी थीं। काम चोर ने भी उस लकड़ी के ढेर में अपनी भी दो-चार लकड़ियाँ फैलाकर रख दीं। उसे यह सोच कर सन्तोष भी हुआ कि अन्त में सब ठीक हो गया था। किसी को भी उसके बारे में कोई शिकायत नहीं रही।

उस दिन रात को गुरु ने शिष्यों से कहा-"अरे फलाना गाँव में भोग कर रहे हैं। हमें भी निमन्त्रण आया है। मुझे पहले वहाँ जाना है। परन्तु तुम सब सवेरे थोड़ा खाना खाकर चल देना। दोपहर तक भोग के लिये पहुँच जाओगे। गुरु की ये बातें सुनकर शिष्य बड़े खुश हुए।

सवेरे-गुरु-पत्नी ने शिष्यों के लिए खाना बनाने के लिए पिछले दिन शाम को लाई हुई लकड़ियों में से लकड़ी लेकर चूल्हा जलाया। परन्तु वे सब गीली लकड़ियाँ थीं, जो काम चोर लाया था। इसलिए चूल्हा जला नहीं। चावल तैयार होते होते सूर्योदय भी हो गया। शिष्य ठीक समय पर खाकर तर्पण के लिए न जा सके। इसीलिए तो कहा गया है कि एक की करतूत होती है और सब बिगड़ते हैं। एक काम चोर की वजह से सब शिष्यों को निराश होना पड़ा।





[१५]

[शिवदत्त और मन्दरदेव ने उस द्वीप में एक विचित्र व्यक्ति को देखा। उसने बताया कि वह शमन द्वीप का रहनेवाला था और उसको समुद्रकेतु नाम के समुद्र डाकू ने बारह साल पहले उस द्वीप में छोड़ दिया था। जब वे सब मिलकर भोजन कर रहे थे तो समुद्र के किनारे से अजीब आवाजें आने लगीं। बाद में....]

शिवदत्त और मन्दरदेव, तलवार निकाल कर पेड़-पौधों को काटते हुए पास वाले समुद्र की ओर चलने लगे। उनके सैनिकों में दो पीछे रह गये थे। बज्रमुष्टि, रेङ्गता रेङ्गता सबसे पहले समुद्र के किनारे पहुँचकर पीछे आनेवालो की ओर देखकर चिल्लाया-"होशियार"।

सब चुपचाप पेड़ों के बीच में से समुद्र की ओर देखने लगे। किनारे से करीब एक हजार गज की दूरी पर समुद्र में नौका युद्ध चल रहा था। उस युद्ध में छः नौकाएँ भाग ले रही थी। यूँ तो समुद्र ही तूफ़ानी हो रहा था; फिर उसमें इन नौकाओं ने और भी उथल-पुथल कर रखी थी। हथियार लिये अनेक योद्धा एक नौका से दूसरी नौका में कूदकर चमचमाते तलवारों से आपस में लड़ रहे थे। शिवदत्त और मन्दरदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ। यकायक एक कुरूपी, काला-कलूटा.. मुख में छुरी रख एक नौका के पाल पर,



रेङ्ग-रेङ्गकर चढ़कर वहाँ से एक हाथ से तलवार चलाते हुए-"जय काली" चिल्लाया और पासवाली नौका में कूद गया। फिर क्या था! लड़ाई और ज़ोर से होने लगी। दोनों तरफ के योद्धाओ के सिर कट-कटकर नीचे समुद्र में गिरने लगे। वह काला कलूटा तलवार चलाता चलाता एक नौका से दूसरी नौका में उछल-फाँद कर रहा था। वह बड़ा जालिम नज़र आता था।

"हुजूर! वह ही समुद्रकेतु है। क्रूर, दुष्ट समुद्री डाकू जिसने मुझे इस जङ्गल में अकेले छोड़ दिया था।" वज्रमुष्टि ने शिवदत्त से दाँत पीसते हुए कहा।

शिवदत्त और मन्दरदेव एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। यह पता लगते ही कि वह समुद्रकेतु है, शिवदत्त ताड़ गया कि वह युद्ध समुद्रकेतु के डाकुओं और समुद्र में सफ़र करनेवाले व्यापारियों के बीच हो रहा था। वह सोच ही रहा था कि उन व्यापारियों की जान बचाने के लिए क्या किया जाय, एक छोटी नाव, बड़ी नौकाओं से अलग होकर, किनारे की ओर आने लगी।

शिवदत्त और मन्दरदेव दोनों आश्चर्यचकित थे। शायद वे लोग, जो युद्ध में भाग ले रहे थे, इस छोटी किश्ती को किनारे की ओर आता नहीं देख रहे थे। वे पहले की तरह चिल्ला चिल्लाकर एक दूसरे को तलवार से मार-काट रहे थे।

थोड़े समय बाद समुद्रकेतु जोर से चिल्लाया-"होय। वे भागे जा रहे हैं। तैरकर उन्हें पकड़ो।"

तुरन्त समुद्रकेतु की टोली के कुछ डाकू कश्ती को पकड़ने के लिए, समुद्र में कूदकर तैरने लगे। उसके बाद ही कुछ और लोग पानी में कूदे और तैरने

वाले डाकुओं का पीछे से तलवारों से मुकाबला करने लगे।

अब दोनों तरफवाले समुद्र में तैरते तैरते या तो तलवार से हमला कर रहे थे, नहीं तो हाथापाई कर रहे थे।

यह युद्ध तो बड़ा अजीब मालूम होता है। एक तरफ तैर भी रहे हैं और दूसरी तरफ शत्रुओं से लड़ भी रहे हैं। इन योद्धाओं का सचमुच बड़ा विचित्र साहस है। इस तरह का युद्ध मैंने कहीं नहीं देखा।" मन्दरदेव ने कहा।

शिवदत्त ने भी सिर हिलाकर कहा- "हाँ! सचमुच बढ़ा अजीब है।" उसकी नज़र एक बार नौकाओं की ओर जाती और दूसरी बार किनारे के पास पहुँचने वाली छोटी कश्ती पर। इन दोनों के बीच, तैराकों का भयङ्कर युद्ध चल रहा था।

धीमे धीमे, वह छोटी कश्ती किनारे के नज़दीक आ गई। अभी किनारा पाँच-छः गज़ दूर ही था कि उसमें से दो स्त्रियों उतरकर जल्दी जल्दी किनारे पहुँच गयीं। तब समुद्रकेतु की भयङ्कर आवाज आसपास प्रतिध्वनित हुई। तुरन्त दो नौकाएँ किनारे की ओर तेजी से आने लगीं।



डूबती हुई दो नौकाओं में से कई चिल्लाने लगे। "हाय हाय" करने लगे। हृदय विदारक दृश्य था।

"मन्दरदेव! अब हमें जरूर कुछ करना ही होगा।" शिवदत्त ने कहा।

"वे स्त्रियाँ कौन हैं, कहाँ जा रही हैं, इस बारे में, इस समय जानने की कोई जरूरत नहीं है। अगर हमने इन डाकुओं का मुकाबला न किया तो वे आसानी से उनके हाथ में पड़ जाएँगी। उनकी जान का ख़तरा है।"

मन्दरदेव ने पीछे मुड़कर देखा। उसको केवल वज्रमुष्टि और चार सैनिक दिखाई



"क्या है....?" मन्दरदेव शिवदत्त की ओर देखने लगा।

"समुद्रकेतु के लिए यह जानना कि हम इतने थोड़े आदमी हैं, हमारे लिए खतरनाक है। इसलिए हम पेड़ों की आड़ में से ऐसे चिल्लाएँगे, जैसे कि हजारों चिल्ला रहे हो, और उन पर कूद पड़ेंगे। बाकी तीन भी, डाकुओं के पीछे से, हमारी तरह चिल्लाते हुए हमला करेंगे।" शिवदत ने कहा।

मन्दरदेव मान गया। भोजन सामग्री की रक्षा करनेवाले सिपाहियों को, यह बात बताने के लिए एक सैनिक को भेजा, और उससे कहा कि वह भी चिल्लाते हुए उनके साथ पीछे से डाकुओं पर हमला करे।

समुद्रकेतु की दो नौकाएँ किनारे की ओर आने लगी। समुद्र में युद्ध ज़रा ठण्डा पड़ गया था। दो नौकाएँ तो डूब गई थी, बाकी दो नौकाओं को अपने वश में कर, समुद्रकेतु की टोली किनारे की ओर आ रही थी। जब उनको रास्ते में तैरने-बाले दिखाई दिये, उनमें से जो उनकी

दिये। "बाकी दो कहाँ हैं?" एक सैनिक से मन्दरदेव ने पूछा।

"हुजुर! वे दोनों, भोजन-सामग्री के पास ही पहरा दे रहे हैं।" सैनिक ने जवाब दिया।

फौरन उनको यहाँ बुलाकर लाओ।"- मन्दरदेव ने आज्ञा दी।

सैनिक उन्हें बुलाने जा रहा था कि शिवदत्त ने रोककर कहा- "मन्दरदेव! हम सब मिलकर सिर्फ नौ ही हैं। समुद्रकेतु के गुट में पचास-साठ से अधिक हैं। उनके साथ हम कैसे लड़ सकेंगे? अगर हमें उनका मुकाबला करना है तो एक तरीका मुझे सूझ रहा है।"

तरफ थे, उनको नौकाओं में उठा लिया, और शत्रुओं का नौका में बैठे बैठे ही काम तमाम करने लगे।

शिवदत्त ने उस भयङ्कर द्वीप की ओर एक बार देखकर कहा- "मन्दरदेव! वे डाकू जैसे तैसे सभी को मार रहे हैं। अब उन स्त्रियों की रक्षा का मार हमें लेना ही होगा।" शिवदत्त ने कहा।

मन्दरदेव ने सोचते हुए अपना सिर हिलाया। "चलो अब हम चलें" कहते हुए उसने दो कदम आगे बढ़ाये और साथ आते हुए बज्रमुष्टि को देखकर आश्चर्य से कहा-"अरे अरे! बज्रपुष्टि के पास तो कोई भी हथियार नहीं है। तुम कैसे लड़ोगे? और हमने अभी तक यह देखा ही न था।"

यह सुन वज्रमुष्टि हँसा। "हुजूर! अगर मुझे छुरी-तलवार की जरूरत हुई तो मैं खुद पा लूँगा। मौक़ा लगे तो समुद्रकेतु को अपने हाथों से गला घोंटने की मर्जी हो रही है।"

सब वहाँ से चले। क्योंकि वज्रमुष्टि उस इलाके से परिचित था, इसलिए वह सबसे आगे आगे चला। किनारे



पर पहुँची हुई स्त्रियों ने एक बार समुद्र की ओर देखा और समुद्रकेतु के डाकुओं को पीछा करता देख, डर के कारण, वे पास के घने जङ्गल में भाग गए।

इस बीच में, समुद्रकेतु की दोनों नौकाएँ किनारे पर आ लगी। वह तलबार निकालकर "जय काली" चिल्लाता पानी में कूदा और पीछे मुड़कर अपने साथियों को देखकर बोला-"उस स्वयंप्रभा को कोई हानि न पहुँचे। उसे जीते जी पकड़ लो और उस बुढ़िया को तलवार के घाट उतार देना। यह काम जल्दी करो, समझे?"

समुद्रकेतु घुटने भर पानी में चलकर किनारे पर पहुँचा। उसके पीछे बीस समुद्री डाकू भी किनारे पर आये। सब उस पेड़ो की झुरमुट की ओर चुपचाप चलने लगे, जहाँ वे स्त्रियाँ भाग गयी थीं।

"हमारे लिए पहले वहाँ पहुँचना ज़रूरी है। जब वे पेड़ों के पास पहुँचे, तो हम सब एक साथ चिल्लाकर उन पर कूदेंगे। विजय मिलेगी, नहीं तो स्वर्ग-प्राप्ति होगी और कोई चारा नहीं है।" शिवदत्त ने कहा।

"सब मराल देवी की कृपा है।" कहता हुआ, मन्दरदेव तलवार ऊपर उठाकर नमस्कार करने लगा।

सब तलवार निकालकर, पेड़ों के पीछे छुपकर तैयार थे। भागी हुई स्त्रियों का कहीं पता न था। "तो मालूम पड़ता है कि शायद वे जङ्गल के अन्दर बहुत दूर चली गई हैं।" मन्दरदेव ने कहा। शिवदत्त ने सिर हिलाकर कहा-"अगर हमने एक बार इन समुद्री डाकुओं को पीछे भगा दिया तो फिर मालूम कर लेंगे कि वे जङ्गल में किस तरफ गयी हैं। हमारे लिए यह कोई कठिन काम नहीं है।"



समुद्रकेतु अपने साथियों को लेकर पेड़ों के झुरमुट के पास चला आ रहा था। वज्रमुष्टि एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गया और एक झुकी हुई टहनी पर अजगर की तरह लेट गया। समुद्रकेतु और उसके साथियों के उस पेड़ के नीचे आते ही, "जय काली" चिल्लाता, उन पर वह बिजली की तरह कूद पड़ा।

उसी समय, "जय मराली" कहते हुए शिवदत्त और उनके सैनिक, पेड-झाड़ झंखाड़ों में से एक साथ बाहर निकलकर उन पर अचानक लपके।

समुद्रकेतु भौंचक्का था। वह घबरा गया। इस बीच में वज्रमुष्टि ने एक डाकू के हाथ से तलवार छीन ली। शेर की तरह गरजते हुए उसने दो-तीन शत्रुओं को वही ठण्डा कर दिया।

समुद्रकेतु जरा सम्भला। अपने साथियों को जोश दिलाता हुआ, "जय काली" चिल्लाता शिवदत्त पर जा कूदा। तब तक उसके कुछ साथी पीठ दिखाकर मैदान छोड़ कर समुद्र की ओर भागे जा रहे थे। इतने में, पिछली तरफ से भयङ्कर आवाज़ करते हुए तीनों सैनिकों ने उन पर हमला किया।



समुद्रकेतु न घबराया। वह शिवदत्त से लड़ता लड़ता, पीछे हटता हटता, चिल्लता जाता था-"भागो मत। ठहरो! दुश्मन दस से अधिक नहीं हैं " यह सुन उसके भागते हुए साथियों का हौसला बढ़ा। साहस बटोरकर वे शिवदत्त के सैनिकों का फिर मुकाबला करने लगे।

दो-तीन मिनट युद्ध खूब जोर से चला। बज्रमुष्टि को चार पाँच डाकुओं ने घेर लिया। परन्तु उसने सब का बार बचाते हुए, अपनी तलवार बिजली की तरह घुमाते हुए दो-तीन को जख्मी कर दिया था। जब कोई जख्मी, मरता मरता नीचे गिरता, तो उसकी जगह आकर एक और ले लेता। शिवदत्त जान गया कि इस तरह का युद्ध बहुत देर तक नहीं चल सकता था। वह एक तरफ अपने से छोटे और अधिक बलवान समुद्रकेतु से लड़ रहा था और दूसरी तरफ, समुद्र के किनारे आते हुए शत्रुओं की दो नौकाओं की ओर देख रहा था। अगर उन दो नौकाओं में से और डाकू आ गये तो वे उसको और उसके सैनिकों को भी घेर सकते थे। उसने सोचा कि उस हालत में, उसका और उसके सैनिकों का पीछे हटना ही अच्छा था। उसने अनुमान लगाया कि जिन स्त्रियों की वे रक्षा करने निकले थे, वे तब तक बहुत दूर चली गई होगी।

शिवदत्त ने "जय मराली" कहकर समुद्रकेतु को एक लात मारी। वह धूल चाटता चाटता उठने को ही था कि शिवदत्त अपने सैनिकों को जोर से पुकार कर, पेड़ों की झुरमुट की ओर भागने लगा। उसको भागते देख उसके सैनिक भी उसके पीछे भागने लगे। चुटकी भर में, शिवदत्त और उसके सैनिक पेड़ों में भाग गये। (अभी और है)





विचित्र चाह

विक्रमार्क यथा पूर्व पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव को उतार कर कन्धे पर डाल वह श्मशान की ओर चल पड़ा। तब वेताल ने कहा- "राजा! सुनो, तुम्हें एक छोटी कहानी सुनाता हूँ।" उसने यह कहानी सुनाई--

किसी समय, कोशल देश में, एक जङ्गली जाति का परिवार रहा करता था। उस परिवार की स्त्री के, एक भाई के सिवाय मायके में और कोई न था। उसके माँ-बाप मर चुके थे। इसलिये उसके पति ने अपने साले को भी अपने पास रख लिया था। वह, उसका लड़का और साला जङ्गल काटकर, उसमें खेती किया करते थे। क्योंकि उन्होंने स्वयं मेहनत करके वह खेत तैयार किया था, इसलिये उस पर



न कर था, न टेक्स ही। जो कुछ फसल होती, वे आराम से खाते। वह परिवार इस तरह अपना समय बिता रहा था।

एक दिन जब कुछ यात्री जङ्गल में से जा रहे थे तो चोरों ने उनको लूट लिया। जब यात्री चिल्लाये तो कुछ और यात्री उनकी मदद के लिए भागे भागे आये। यह देख चोर जङ्गल में कहीं नौ दो ग्यारह हो गये। उनको ढूँढ़ते ढूँढ़ते कुछ यात्री वहाँ भी पहुँचे, जहाँ जङ्गली परिवार खेती कर रहा था। वहाँ उनको हल जोतते हुए जङ्गली, उसका साला और उसका लड़का दिखाई दिये।

"ये ही चोर हैं। चोरी करके यहाँ भाग आये हैं और ऐसे हल चला रहे हैं, जैसे कुछ मालूम ही न हो।" चोरों को ढूँढ़ते हुए यात्री आपस में सोचने लगे। फिर वे उन जङ्गलियों को जबरदस्ती पकड़ करके राजा के पास ले गये।

"पहले इनको कैद में डाल दो।" राजा ने हुक्म दिया। जङ्गली, उसके साले और लड़के को जेल में डाल दिया गया।

बाद में उनकी सुनवाई हुई। उनको निर्दोष साबित करने के लिए कोई गवाही न थी। जो लोग लूटे गये थे, उन्होंने कहा कि जिन्होंने उन्हें लूटा था, वे भी तीन थे, और तीनों जङ्गली थे। पर चूँकि उनके पास से चोरी का माल न बरामद हुआ था, इसलिये न्यायाधिकारी ने उनको फाँसी की सजा न देकर, काले पानी की सजा दे दी। वे बिचारे जङ्गल में खेती किया करते थे, इसलिये वहाँ कोई उनकी जान पहचान का भी न था।

यह बात जङ्गली की पत्नी तक भी पहुँची। वह तुरन्त राजधानी की ओर चल

पड़ी। राज-महल के पास जाकर वह रोने लगी-" बाबू! बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये।"

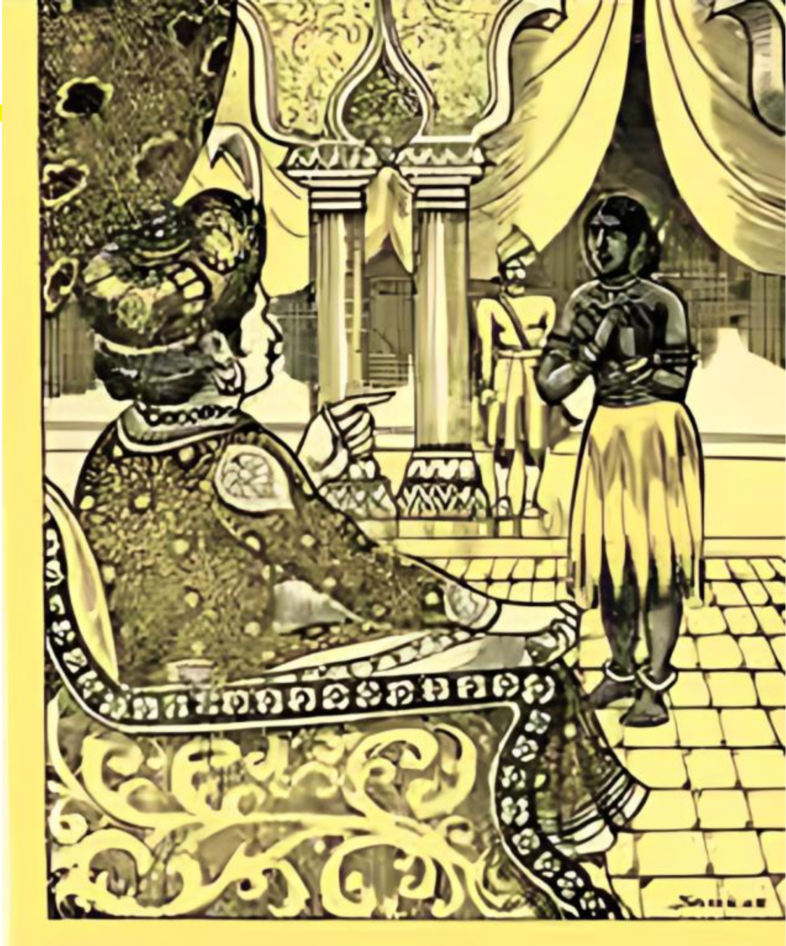
राजा ने अपने सिपाहियों को यह जानने के लिए भेजा कि वह स्त्री कौन है और क्यों इस तरह रो रही है। उन्होने आकर जङ्गली स्त्री से पूछा-"क्यों गला फाड़कर चिल्ला रही है?"

"हुजूर.... राजा ने मेरे बेकसूर लोगों को क़ैद में डाल दिया है। मैं अकेली औरत रह गई हूँ....मेरी क्या हालत होगी?" स्त्री ने उनसे पूछा।

सिपाहियों ने जाकर उसका जवाब राजा को बताया। राजा ने तब कहा-"उस औरत को थोड़ा-बहुत पैसा देकर भेज दो।"

सिपाहियों ने कुछ पैसा ले जाकर जङ्गली स्त्री को देना चाहा। पर उसने उसे लेने से इनकार कर दिया। जब सिपाहियों ने जाकर राजा को इसकी सूचना दी तो राजा ने उस स्त्री को बुलवाया। जङ्गली स्त्री, नमस्कार करके राजा के सामने खड़ी हो गई।

"सुना है तुम्हें जब वैसे दिये गये तो तुमने लेने से मना कर दिया। क्या चाहिये तुम्हें?" राजा ने पूछा।



"महाराज! आपने एक साथ, मेरे पति, मेरे लड़के, और मेरे भाई को कैद में डालकर मुझे अकेला छोड़ दिया है। घर में कोई मर्द नहीं है।" जङ्गली स्त्री ने कहा।

राजा उदार दिल का था। उसने कहा-"तीनों को रिहा कर देना सम्भव नहीं है। उनमें से किसी एक को चुन लो, इसी समय छोड़ दूँगा।"

"ऐसी बात है तो मेरे भाई को छोड़ दीजिये।" उस स्त्री ने कहा। यह सुन राजा सन्तुष्ट हुआ और उसने जङ्गली,

उसके लड़के, और साले तीनों को क़ैद से अगर एक पति मर जाय तो वे दूसरी शादी छुड़वा दिया।

वेताल ने यह कहानी सुनाकर राजा से पूछा-"राजा! मुझे एक सन्देह है। जङ्गली स्त्री ने भाई को छोड़ने के लिए क्यों कहा? क्या उसको अपने पति और लड़के पर प्रेम न था? या वह उनमें से किसी पर पक्षपात न करना चाहती थी? खैर, राजा ने तो कहा था कि वह एक को छोड़ देगा, फिर उसने तीनों को क्यों छोड़ दिया? क्या इसलिये कि उसने बहुत देने के लिए वादा किया था, पर उसने थोड़ा ही माँगा था? इन प्रश्नों का उत्तर तुमने जान बूझकर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"जङ्गली स्त्री के भाई को छोड़ने के लिए कहने के जो कारण तुमने बताये हैं, वे नहीं हैं। जङ्गलियों में यह रस्म है कि अगर एक पति मर जाए तो वे दूसरी शादी कर सकते हैं।

इसलिये अगर उसका वह पति चला जाता तो वह किसी और से शादी कर सकती थी। उसी तरह अगर वह लड़का चला जाता तो एक और लड़का पैदा हो सकता था। पर वह भाई चला जाता तो वह दूसरा भाई न पाती। इसलिये ही उसने भाई को छोड़ने के लिए कहा था। यह समझ कर राजा सन्तुष्ट हुआ। क्योंकि दानी को यह गँवारा नहीं होता कि बड़ी इच्छा को पूरी कर, छोटी इच्छा पूरी न करे, इसलिये राजा ने उसके भाई के साथ, उसके पति और लड़के को भी छुड़वा दिया।" विक्रमार्क ने जवाब दिया। इस तरह राजा का मौन-भङ्ग होते ही वेताल शव के साथ पेड़ पर जा बैठा। [कल्पित]





किसी जमाने में रोम में एक रईस धर्मात्मा रहा करता था। उसका दिल अनाथों को देखकर पसीज उठता था। उन लोगों की वह हर तरह से मदद किया करता और अपने पास रखकर उनका पालन-पोषण भी किया करता।

उसी नगर में एक भिखारी रहा करता था। वह तरह तरह के वेष बना कर, लोगों की उदारता पर पेट भरा करता था। उसे मालूम हुआ कि फलाना धर्मात्मा बड़ा दानी भी था। भिखारी ने उसके पास से अच्छी-खासी भीख वसूल करने की सोची। उसने अपने पैर को, जाने किन-किन चीज़ों का लेप करके सुजा लिया, उस में एक फोड़ा भी तैयार कर लिया। क्योंकि वह इस तरह की विद्याओं में पारङ्गत था, इसलिये आसानी से दूसरे उसको जान न सकते थे। पैर पकड़कर, कराहता-चिल्लाता वह एक दिन सवेरे धर्मात्मा के घर के बाहर, भीख माँगने के लिए, धरना देकर बैठ गया। उस घर में आने-जाने वाले उस पर दया करके, दो-चार पैसे उसको दे जाते। परन्तु वह तो धर्मात्मा की भीख की फ़िराक़ में था। इसलिये वह, वह जगह छोड़कर कहीं और न गया।

थोड़ी देर बाद, धर्मात्मा स्वयं बाहर आया। उसको देखते ही भिखारी ने कहा-"बाबू, दया करो! मरा जा रहा हूँ।" वह जोर से चिल्लाकर रोने लगा।

उसका पैर देखते ही धर्मात्मा का दिल पिघल गया। उसने अपने सिपाहियों को बुलाकर कहा-"इस विचारे को कहीं ले जाकर लिटाओ। मेरे बिस्तर पर ही लिटाओ। मैं अच्छे वैद्यों को इस बीच

कुमारी सुषमा

में बुलाता हूँ। इसे जो कुछ चाहिये, दो। किसी चीज़ की कमी न हो।" यह कह धर्मात्मा चला गया। धर्मात्मा के नौकर-चाकरों ने उसको ले जाकर, धर्मात्मा के मोटे गद्दोंवाले पलङ्ग पर लिटा दिया। थोड़ी देर बाद दो वैद्य, भिखारी की दवा दारू करने के लिये वहाँ आये। वे दोनों रोम नगर में मशहूर वैद्य थे।

भिखारी को ऐसा लगा जैसे वह फल तोड़ने गया हो और पेड़ ही उस पर गिर पड़ा हो। उसने सोचा था कि धर्मात्मा दान देकर उसे भेज देंगे, पर उन्होंने इन वैद्यों को भेज दिया।

उनमें से एक वैद्य ने भिखारी का पैर देखते ही कहा-"अरे! फोड़ा बहुत पक गया है! पैर काटना ही होगा।" भिखारी का दिल धम-सा गया।

दुसरे वैद्य ने भिखारी का पैर गौर से देखा-"यह झूठ-मूठ की सूजन है। भिखारी कई चीज़ों का लेप करके, इस तरह की बीमारियाँ पैदा कर सकते हैं। थोड़ी देर बाद यह सूजन गायब हो जायेगी।"

पहले वैद्य भी पैर को अच्छी तरह देखने-चालने के बाद जान गया कि बीमारी सच्ची न थी। दोनों वैद्य यह देख कर झुञ्झला

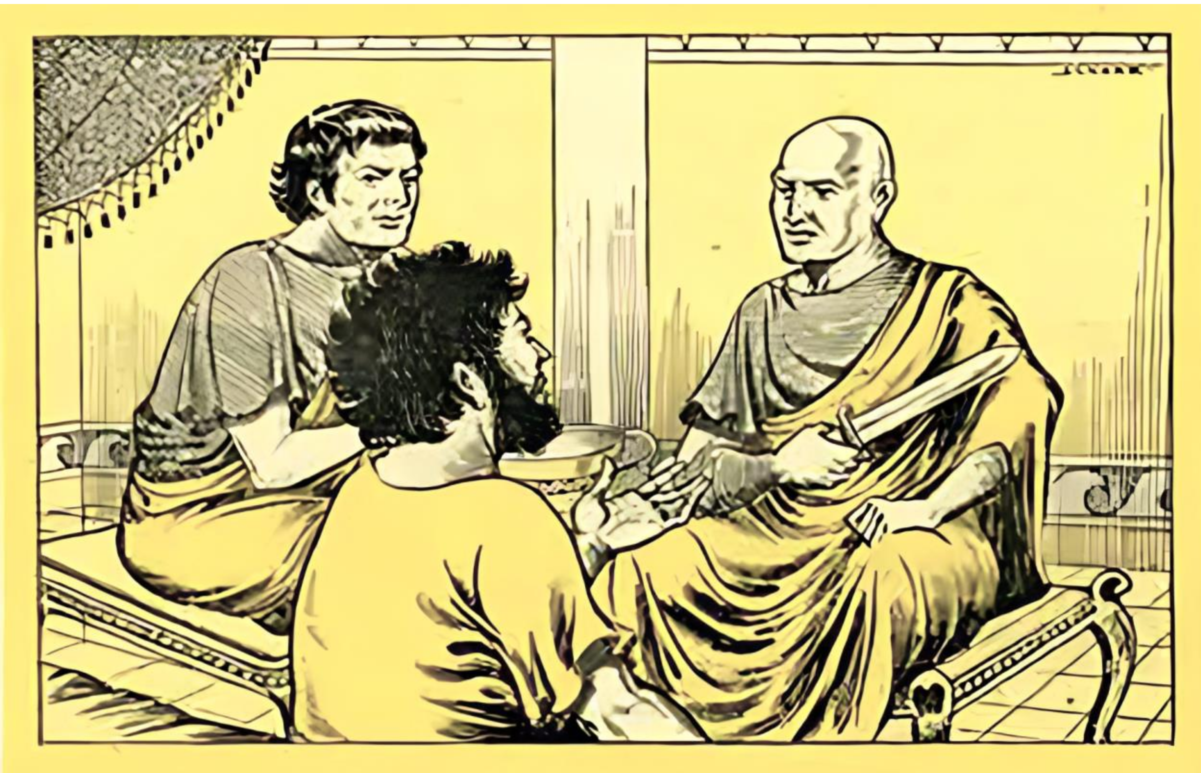


उठे। "अगर दवा-दारू करते तो रईस खूब रुपया-पैसा देते। चोर-भिखारी कहीं का! इसने हमें अच्छी गुलाट दी। इसकी पोल उन के सामने खोलेंगे।" एक वैद्य ने कहा।

"उससे अच्छा होगा कि बीमारी सच्ची जानकर इसका पैर काट दिया जाय। तब इसे अक्कल आयेगी।" दूसरे वैद्य ने कहा।

भिखारी को मौत का डर लगने लगा। वह बिस्तरे पर बैठकर गिड़गिड़ाने लगा-"अक्ल मारी गई थी....दो-चार पैसे की आस से मैंने यह धोखा दिया था। मुझे माफ़ कीजिये। मेरा पैर न काटिये। उससे आपको क्या फायदा?"

वैद्य ने आपस में इशारा किया। "अब भी क्या जाता है? हम यह कहेंगे कि हमने उसका पैर ठीक कर दिया है, और अपने पैसे वसूल कर लेंगे।" उन दोनों ने निश्चय किया। उन्होंने भिखारी से कहा-"अगर तूने ज़बान खोली, तो खबरदार! जब तक हम नहीं कहे, तब तक तू वह धर्मात्मा से यही कहता रह कि तेरा पैर ठीक नहीं हुआ है। अगर न कहेगा तो समझ ले कि वह पैर तेरा नहीं है। समझे?" उन्होंने उसे डराया-धमकाया।



भिखारी यद्यपि पेट भरने के लिए दूसरों को धोखा दिया करता था, तो भी वह इन मशहूर वैद्यों का धोखा देखकर, चकित था। परन्तु चूँकि उनमें जितनी हिम्मत थी, उसमें न थी; इसलिये वह वैद्यों की बात पर चलने लगा।

वैद्यों ने धर्मात्मा से कहा-"यह विचारा बड़ी नाजुक हालत में है। भगवान की दया से वह आपकी नज़रों में आया, और आपने हमें बुलाया। उसका पैर ठीक करने के लिए हम भरसक कोशिश करेंगे। बाद में भगवान की इच्छा।"

वे रोज़ आते, पट्टियाँ खोलकर बाँध जाते। कई सप्ताह बीत गये। महीने बीत गये; पर न पैर ही ठीक हुआ, न चिकित्सा ही बन्द हुई। भिखारी के दिन भी मौज में कट रहे थे। परन्तु वह सोचने लगा कि वे दिन ही भले थे, जब वह स्वच्छन्द, गली गली में भीख माँगा करता था। उसने वैद्यों से विनती की-"आप मेरा पैर जल्दी ठीक कीजिये, आपका भला होगा।" तीन महीने बाद भिखारी से तङ्ग आकर, वैद्यों ने जाकर धर्मात्मा से कहा कि चिकित्सा पूरी हो गई है। धर्मात्मा ने सन्तुष्ट होकर, वैद्यों को बहुत सा ईनाम और रूपया-पैसा दिया।

तब धर्मात्मा ने भिखारी से पूछा-"अब तो तुम्हारा पैर ठीक हो गया है ..... क्या काम करना चाहते हो? कैसे रोज़ी करोगे?"

"बाबू! अक्ल आ गई है, फिर कभी भीख न माँगूँगा। उसके सिवाय और सब काम कर लूँगा।" भिखारी ने कहा।

धर्मात्मा यह न जान सका कि वह वैसा क्यों कह रहा था। तो भी उसने उसको अपने पास ही नौकर रख लिया।





किसी देश का एक छोटा राजा था। वह खास समृद्ध न था। उसकी एक सुन्दर लड़की थी। उसका नाम गुणमणि था। राजा की स्थिति ऐसी न थी कि स्वयं उसके लिये उपयुक्त वर खोज पाता, इसलिये उसने उसके लिए स्वयंवर रचने का निश्चय किया। स्वयंवर की घोषणा पर उस कन्या से विवाह करने के इच्छुक, अपने अपने ओहदे के अनुसार, उसे उपहार लाकर देंगे। उनमें से, जिसको चाहे, कन्या चुन सकती है।

गुणमणि से विवाह करने के लिये आनेवालों में भद्र नाम का व्यक्ति सबसे अधिक जोर-शोर से आया। उसके पिता का नाम दुर्जय था। वह बहुत ही भयङ्कर और क्रूर था। अपनी धूर्तता के कारण उसने कई राजाओं की नींद खराब कर रखी थी। उससे तङ्ग आकर, एक बार पाँच-दस राजाओं ने मिलकर उस पर हमला करने की सोची। जब सलाह-मशवरे के बाद वे वापिस घर जा रहे थे, तो दुर्जय ने उन्हें यकायक रास्ते में घेर लिया, उनके पास से काफी रुपया वसूल कर उन्हें छोड़ दिया।

भद्र के राजमहल की ड्योढ़ी में पहुँचते ही वीर नाम का एक व्यक्ति भी स्वयंवर के लिए वहाँ आया। वह एक बूढ़े कमज़ोर घोड़े पर सवार था। उसने पुराना जोड़ोंवाला, टूटा-फूटा कवच पहन रखा था। बहुत गरीब जान पड़ता था। उन राजाओं में, जो दुर्जय के हाथ में पड़कर अपना सारा धन खो चुके थे, वीर का पिता भी था। भद्र ने नीची निगाह से उसको और उसके मरियल घोड़े को देखा।

श्री मनोज कुमार गुप्त



राजकुमारों में, भद्र सितारों में चान्द की तरह चमक रहा था। सब प्रतियोगिताओं में उसी का ही पहला हाथ था। पर वीर भी कोई कम न था। द्वन्द्व युद्ध में, उसने भद्र से अधिक व्यक्तियों को हराया था। परन्तु जब भद्र और वीर का मुकाबला हुआ, तो वीर हार गया। इसमें कोई आश्चर्य न था। भद्र के पास काफी घोड़े थे। एक एक से लड़ने के लिए वह एक एक घोड़े पर चढ़ता था। वीर का घोड़ा, कई युद्धों के बाद थक गया था। वीर की हार का यही कारण था।

फिर अपने घोड़े को ऐंड मारकर ड्योढ़ी से वह सरपट आगे बढ़ गया। वीर ने उसको आगे बढ़ने दिया। फिर उसने कहा-"जब राजा आते हैं तो नौकर उनके आगे आगे चलते ही हैं।" भद्र यह सुन गरम हो गया। उसने मौका मिलने पर उससे बदला लेने की ठानी।

स्वयंवर के कार्यक्रम में, पहले पहले बल-पराक्रम का प्रदर्शन था। एक मैदान में इस प्रदर्शन के लिए प्रबन्ध किया गया था। प्रदर्शन देखने के लिए राज-कुटुम्ब के साथ गुणमणि भी उपास्थित थी।

सूर्यास्त के बाद सब अतिथि दरबार भवन में एकत्रित हुए। एक एक करके, सब ने अपने अपने लाये हुए उपहार, गुणमणि के सामने रखे। कई राजकुमार बहुमूल्य उपहार लाये थे। परन्तु भद्र के उपहारों के सामने उनकी कोई गिनती न थी। सब से अन्त में वीर आया। उसने अपनी तलवार निकालकर गुणमणि के सामने रखते हुए कहा-"मैं गरीब हूँ। यही एक मेरे पास बहुमूल्य वस्तु है।"

"इसमें भी क्या रखा है? इसी की वजह से तो थोड़ी देर पहिले तुम हार गये थे।" भद्र ने ताना मारा।

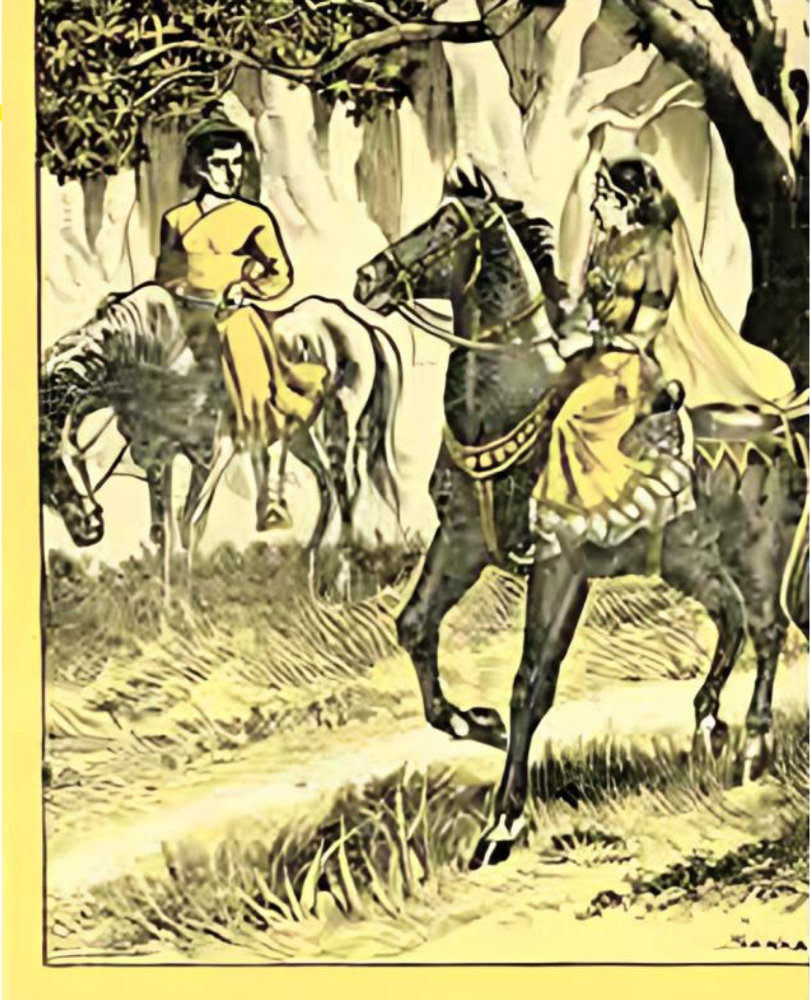
"अगर हम दोनों में समान रूपसे युद्ध होता तो तब इस तलवार की महिमा देखते।" बीर ने कहा।

अगले दिन के कार्यक्रम में जङ्गल में शिकार खेलना था। अतिथि अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर शिकार के लिए निकले। जाने को तो वीर भी जङ्गल गया; पर शिकार खेलकर वह अपने घोड़े को थकाना नहीं चाहता था। भद्र आदि, जो सबसे आगे घोड़ों पर निकल गये थे, उनके साथ गुणमणि भी घोड़े पर सवार होकर निकली। परन्तु थोड़ी दूर जाने के बाद, उसको शिकार में दिलचस्पी कम हो गई और वह वापिस लौटने लगी। तब उसको वीर आता दिखाई दिया।

"क्या आपको शिकार का शौक नहीं है?" गुणमणि ने वीर से पूछा।

"है तो, पर यह बूढ़ा घोड़ा अर्से से हमारे वंश की सेवा कर रहा है। मैं उसे थकाना नहीं चाहता।" वीर ने कहा था।

"लगता है.... अच्छा घोड़ा न होने के कारण ही आप सबसे पीछे जा रहे हैं। आप मेरा घोड़ा ले लीजिये और अपना मुझे दे दीजिये।" गुणमणि ने कहा।



"यह घोड़ा मुझे प्यारा है। यह मैं किसी को न दूँगा।" वीर ने कहा।

"कल आपने तलवार देते हुए कहा था कि वह ही आपके पास सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु थी, इसका मतलब है कि वह बात झूठी थी।" कहते कहते गुणमणि ने अपने घोड़े को ऐंड लगाई; बिना पीछे देखे, सरपट चली गई।

उसके बाद स्वयंवर का कार्यक्रम पूरा हो गया। गुणमणि को एक महीने बाद, अपना निर्णय घोषित करना था। अतिथि जाने लगे। वीर के सिवाय गुणमणि ने सब

को बिदा दी। बीर की तरफ उसने देखा तक नहीं। यह देख उसे बड़ा अफसोस हुआ। जब वह राजधानी से कुछ दूर गया तो उसको एक छोटा गड़रिया दिखाई दिया। बीर ने उस गड़रिये को बुलाकर कहा-"जो तू अब देखने जा रहा है, उसके बारे मैं अपनी राजकुमारी के पास जाकर कहना।" कहते हुए उसने तलवार निकाल कर घोड़े को मार कर कहा-"मैं गुणमणि के लिए तेरी बलि दे रहा हूँ।" मृत घोड़े से यह कह वह अपने रास्ते पर चला गया।

इस घटना के एक सप्ताह बाद, वीर के घर के बाहर एक अच्छी नसल का घोड़ा बँधा था। उसके गले में एक बिल्ला था। उस पर लिखा था-"प्रत्यक्ष भेद ठीक किये जा सकते हैं।" वीर यह अनुमान कर कि वह घोड़ा गुणमणि ने ही भेजा था, बड़ा खुश हुआ।

एक महीना बीत गया। जिन राजकुमारों ने गुणमणि के स्वयंवर में भाग लिया था, उसका निश्चय जानने के लिए फिर आये। सब सोच रहे थे कि वह अवश्य भद्र से ही विवाह करेगी। परन्तु उसने सब के सामने स्पष्ट कहा कि वह वीर को ही पति के रूप



में स्वीकार करेगी। सब को आश्चर्य हुआ। पर भद्र गुस्से से जलने लगा।

"मैंने अभी तक इस वीर की होशियारी नहीं देखी है.... विवाह होने से पहिले, द्वन्द्व युद्ध में मैं यह देख लेना चाहता हूँ कि वह रहता है, या मैं।" भद्र ने कहा।

"अब शिकार के लिए चला जाय। शिकार से वापिस आने के बाद, मैं आप में से किसी के साथ भी लड़ने के लिए तैयार हूँ।" बीर ने कहा।

अतिथि, जङ्गल में जाकर दिन भर शिकार खेलते रहे। शाम होने पर सब अपना अपना शिकार लेकर वापिस आये। भद्र और वीर वापिस न आये। गुणमति डरने लगी, न जाने वे दोनों जङ्गल में किस दुर्घटना के शिकार हो गये हो। परन्तु, अन्धेरा होने से पहले, कई जन्तुओं को मारकर, उनको साथ लेकर भद्र वापिस आ गया। वीर का कहीं पता न था। फिर सब के सब भोजन के लिए उठे। उस समय वीर वापिस आ गया। उसकी शक्ल-सूरत से लगता था, जैसे उसने किसी चीज़ का शिकार न किया हो। "इतनी देर बाद आये हो! बड़े बड़े जानवरों का शिकार किया



होगा। कहाँ है तुम्हारे शिकार?" भद्र ने पूछा।

"मैने अधिक जन्तुओं का शिकार नहीं किया है, पर शिकार का मिलना, और न मिलना, यह किस्मत की बात है; यह सब जानते ही हैं।"

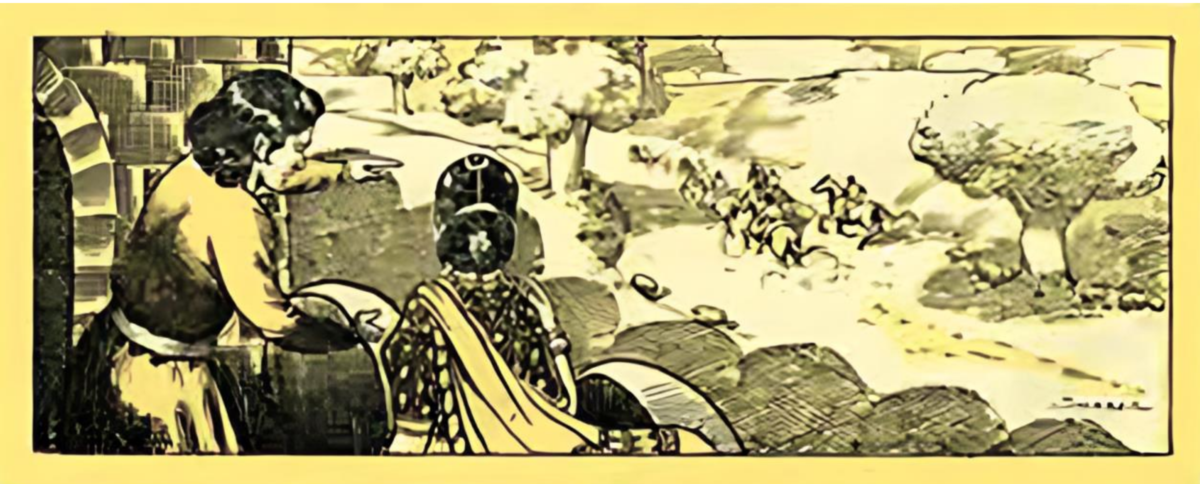
"तुमने जिसका शिकार किया है, उसे दिखाते क्यों नहीं हो? क्यों इधर उधर की बातें करते हो?" भद्र ने उसे छेड़ा।

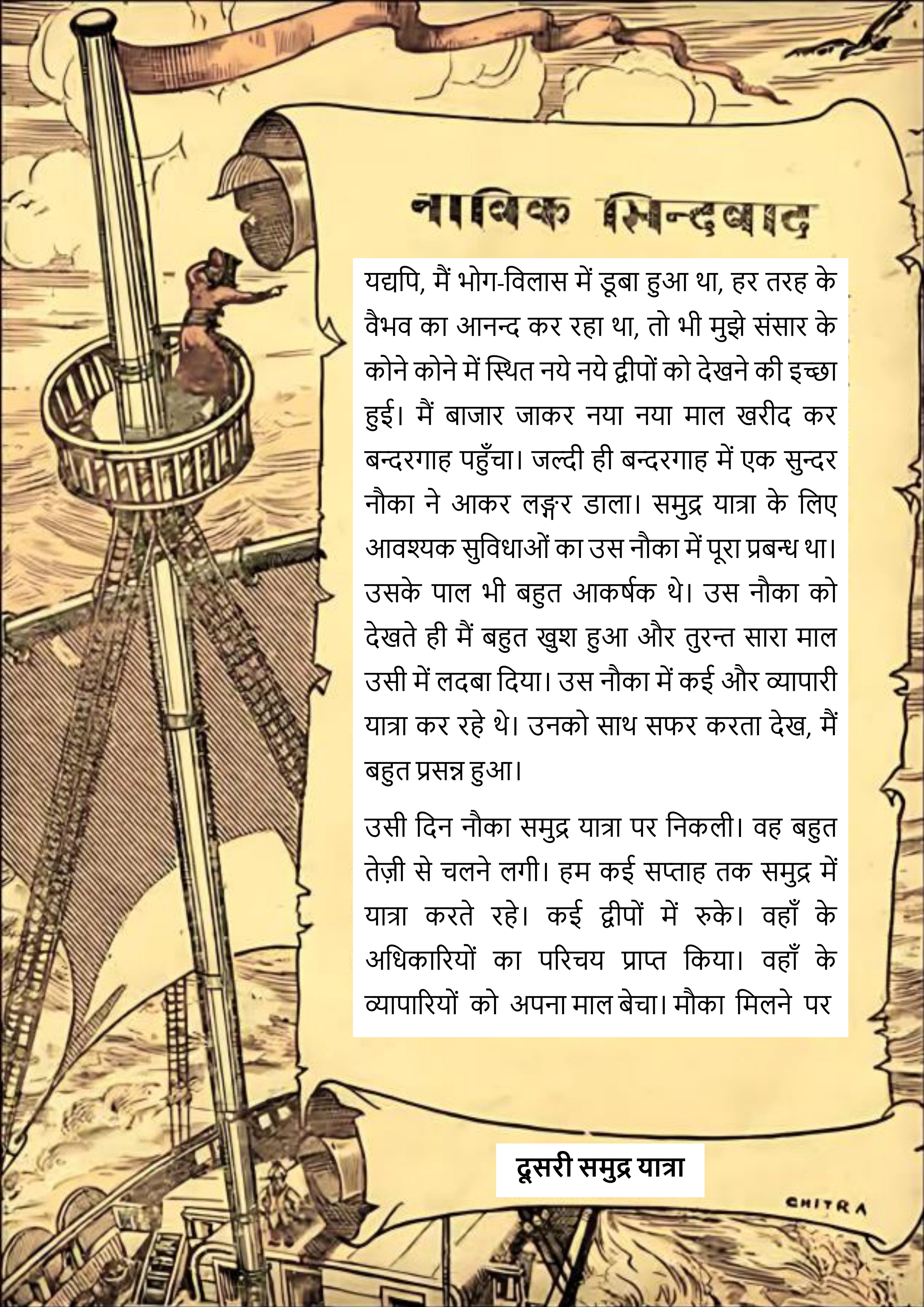
"यह रहा मेरा शिकार। देख!" कहते हुए, वीर ने अपने दुपट्टे में छुपाये हुए, एक मनुष्य का सिर निकालकर भद्र के पैरों के सामने फेंक दिया। वह भद्र के पिता दुर्जय का सिर था।

थोड़ी देर तक किसी के मुख से कोई बात न निकली। सब हैरान थे। पर बाद में वे सब बहुत खुश हुए। क्योंकि उस दुर्जय ने कइयों की हालत ख़राब कर रखी थी। सबकी बग़ल में वह छुरा-सा था। उस दुष्ट को इतने दिनों बाद इस वीर ने तलवार के घाट उतार दिया था।

परन्तु भद्र के हाथ-पैर ठण्ड़े हो गये। वह पिता के भरोसे पर ही घमण्ड से मनमानी किया करता था। उसको मारनेवाले बीर को देखकर, वह बहुत डर गया। इसलिए उसने वीर को द्वन्द्व युद्ध के लिए फिर न ललकारा। उसे पिता को मारने का बदला लेने का भी हौसला न हुआ। इसलिए भद्र को सब बुरा समझने लगे।

बाद में, गुणमणि का वीर से विवाह हुआ। जो राजा स्वयंवर के लिए आये थे, विवाह तक रहे। भद्र अपने पिता का किला छोड़कर थोड़ी सेना के साथ कहीं भाग गया। वह किला वीर के वश में आ गया। आसपास के राजाओं से मैत्री कर वह पत्नी के साथ, सुखपूर्वक राज्य करने लगा।





यद्यपि, मैं भोग-विलास में डूबा हुआ था, हर तरह के वैभव का आनन्द कर रहा था, तो भी मुझे संसार के कोने कोने में स्थित नये नये द्वीपों को देखने की इच्छा हुई। मैं बाजार जाकर नया नया माल खरीद कर बन्दरगाह पहुँचा। जल्दी ही बन्दरगाह में एक सुन्दर नौका ने आकर लङ्गर डाला। समुद्र यात्रा के लिए आवश्यक सुविधाओं का उस नौका में पूरा प्रबन्ध था। उसके पाल भी बहुत आकर्षक थे। उस नौका को देखते ही मैं बहुत खुश हुआ और तुरन्त सारा माल उसी में लदबा दिया। उस नौका में कई और व्यापारी यात्रा कर रहे थे। उनको साथ सफर करता देख, मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

उसी दिन नौका समुद्र यात्रा पर निकली। वह बहुत तेज़ी से चलने लगी। हम कई सप्ताह तक समुद्र में यात्रा करते रहे। कई द्वीपों में रुके। वहाँ के अधिकारियों का परिचय प्राप्त किया। वहाँ के व्यापारियों को अपना माल बेचा। मौका मिलने पर

दूसरी समुद्र यात्रा



जगह खाना खाना ही, दावत खाने के बराबर था। धीमे धीमे भीनी भीनी हवा चल रही थी। हरी घास पर लेटा लेटा, मैं ऊँघने लगा।

जब मैं सोकर उठा तो द्वीप में कोई न था। घाट पर नौका भी न थी। मुझे छोड़कर औरों को चढ़ाकर नौका चली गई होगी। समुद्र की ओर ध्यान से देखने पर, दूरी पर, नौका के पाल दिखाई दिये। वे भी आँखों से ओझल हो रहे थे।

मैं पागल सा हो गया। क्या बताऊँ, मेरी हालत क्या हो गई थी। मेरा सर्वस्व उस नौका में लदा हुआ था। मुझ गरीब की उस निर्जन द्वीप में क्या हालत होगी? मेरी अक्ल जाती रही। "रे सिन्दवाद! तेरा घर-बार बरबाद हो गया है। क्या तेरी किस्मत, जिसने तेरी पहली समुद्र यात्रा में रक्षा की थी, इस बार भी मदद करेगी? अगर एक बार सुराई हाथ से फिसलकर जमीन पर गिरकर न टूटी तो दूसरी बार तो टूटेगी ही।" मैं जोर जोर से चिल्लाने लगा।

मैं रोने लगा। अपनी निराशा को भूलने के लिए, मैं सिर पीट पीटकर चिल्लाने

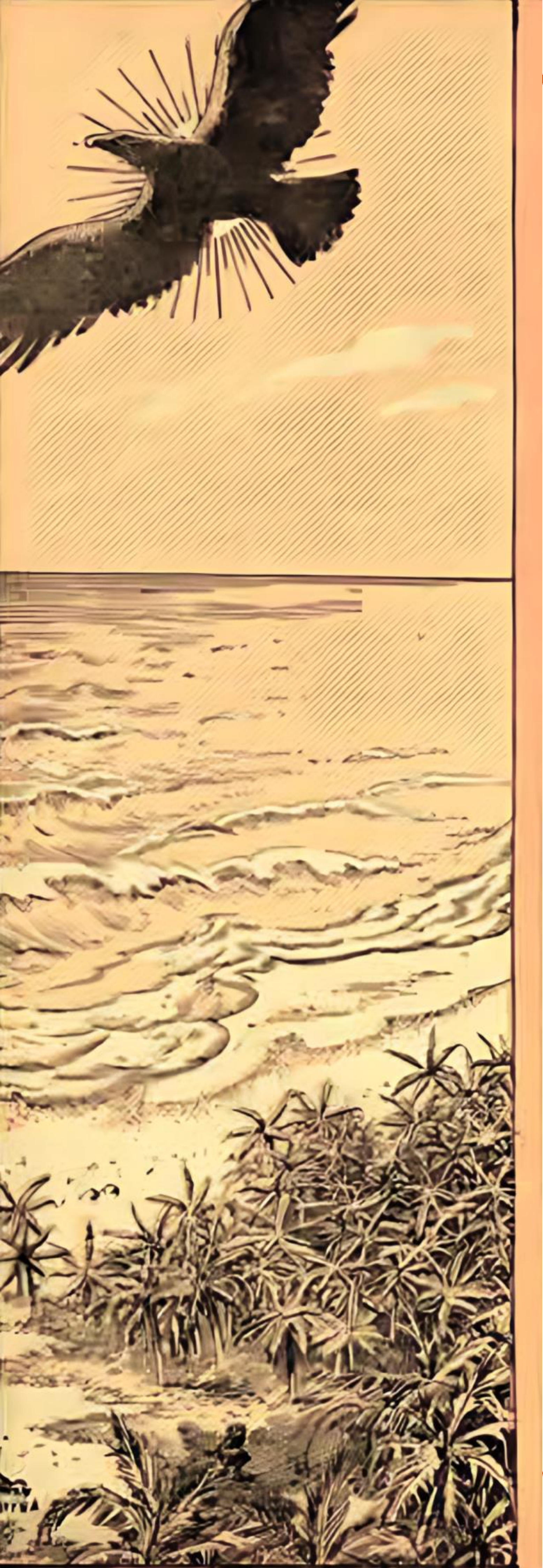
माल का अदला-बदला भी उनसे किया। आखिर हमारी नौका एक द्वीप में पहुँची। उस द्वीप के सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। जहाँ देखो, वहीं ऊँचे ऊँचे पेड़ खड़े थे। उन पर तरह तरह के पक्षी चह चहा रहे थे। नदी-नाले वह रहे थे। उस द्वीप में मनुष्य का नाम न था। हम सब ने उस द्वीप में आराम करना चाहा। कह सुन कर कप्तान को भी लङ्गर डलवाने के लिए मना लिया। सब उतर कर वृक्षों के नीचे टहलने लगे। मैं थोड़ा खा-पीकर नाले के किनारे, वृक्षों के नीचे, हरी घास पर आराम करने गया। उस

लगा। "अरे अभागे! क्या तेरा बगदाद में आराम से गुजारा नहीं हो रहा था कि बहुत मना करने पर भी फिर तुझ पर समुद्र यात्रा की धुन सवार हुई। कोई ऐसा भोग न था, जिसका तू आनन्द न कर रहा था। कौन-सी कमी तुझे हो गई थी कि फिर समुद्र यात्रा पर निकला? पहली यात्रा आराम से कटी थी; क्या इसलिए फिर चले हो? सोचने से क्या फायदा? जो पैदा हुआ है सो मरेगा ही।" मैं पागल को तरह नोचे गिर गया।

धीमे धीमे मुझे असलियत का भान होने लगा। गुज़री हुई घटनाओं पर रोना अच्छा नहीं। भविष्य के बारे में ही सोचना चाहिये। मैं उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देर इधर उधर लड़खड़ाता रहा। फिर सूझा कि इस तरह घूमना-फिरना भी अच्छा न था। कोई भी क्रूर जन्तु आसानी से हमला कर सकता था। इसलिए में एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ बैठा। उस पेड़ से चारों तरफ देखा। चारों ओर सिवाय पेड़, पक्षी और पहाड़ पर्वत के और कुछ न दिखाई दिया। परन्तु एक तरफ कोई बड़ी चीज़, सफेद



सफेद-सी दिखाई दी। मुझे जानने की इच्छा हुई कि वह क्या चीज थी। मैं पेड़ से उतरकर उस तरफ चल दिया। परन्तु क्योंकि अन्दर भय सता रहा था, इसलिए पैर जल्दी जल्दी नहीं उठते थे। आखिर वह सफेद वस्तु, एक बड़ी बुर्ज़ की तरह दिखाई देने लगी। शायद अन्दर जाने के लिए कोई रास्ता हो, यह देखने के लिए मैने उसकी प्रदक्षिणा की। पर कहीं कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया। फिर उस पर चढ़ने की सोची। पर वह सङ्गमरमर की तरह चिकना था। कहीं पैर रखने की जगह न थी। यह जानने के लिए कि वह



कितना बड़ा है, में उसके चारों ओर कदम से नापता नापता गया; रेत पर मेरे पैरों के निशान गिनने से साफ पता लग गया कि उसकी परिधि करीब १३० फूट थी।

मैं यह सोच ही रहा था कि उस विचित्र इमारत मैं कैसे घुसा जाय कि सूर्य छुप-सा गया और चारों ओर अन्धेरा छा गया। पहले तो मैंने सोचा कि सूर्य को बादलों ने घेर लिया होगा, फिर सूझा कि गर्मियों में बादलों का क्या काम? जब मैं यह गौर से देख रहा था कि किसने सूर्य को घेर रखा है, एक बहुत बड़ा पक्षी, उसके सामने से पंख फड़-फड़ाता गुज़रा। उसके पंख इतने बड़े थे कि कुछ नहीं कहा जा सकता।

पहले तो मुझे ही अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। पर बाद में, उन बड़े बड़े भयङ्कर पक्षियों की याद आ गई, जिनके बारे में मैने सुन रखा था। वे पक्षी समुद्र के एक द्वीप में रहते हैं, वे हाथियों तक पकड़कर आसानी से उड़ जाते हैं, आदि आदि बातें, मैंने बचपन में ही नाविकों और यात्रियों के मुँह सुनी थीं। मुझे सूझा कि शायद यह पक्षी वही है और हो न हो वह बुर्ज, इसी का अण्डा है। यह मेरा

अनुमान ठीक भी सिद्ध हुआ। क्योंकि वह पक्षी, उसी अण्डे पर ही उतरा और दोनों पंख फैलाकर सेने लगा।

जब वह पक्षी अण्डे पर उतर रहा था तो मैं भी औधे मुँह रेत पर पड़ा हुआ था। जब मैंने उठकर देखा तो पक्षी का पैर एक बड़े पेड़ के तने से भी बड़ा दिखाई दिया। मैंने अपनी पगड़ी उतारी और उसको एक मोटी रस्सी की तरह पेल लिया। उससे मैने अपने को उसके पैर की एक अंगुली से जोर से बाँध लिया। मेरा ख्याल था कि कभी न कभी तो वह पक्षी उड़ेगा ही। अगर मैं भी उसके साथ उड़ा तो वह कहीं न कहीं मुझे ऐसी जगह ले जायेगा, जहाँ आदमी रहते होंगे। इस निर्जन द्वीप से तो खराब से खराब जगह भी भली थी।

उस पक्षी को जरा भी न मालूम था कि मैंने अपने को उसके पर की अंगुली में बाँध लिया था। मैं शायद उस के लिए, एक मक्खी था या मच्छर की तरह था।

मैं रात भर उसी हालत में रहा। कहीं ऐसा न हो कि मैं सोता हूँ और वह उड़ जाये, मैं रात भर जागता रहा। परन्तु सवेरा होने पर ही वह अण्डे पर से उठा।



एक भयङ्कर आवाज करके, वह आकाश में उड़ चला। में नहीं कह सकता कि वह कितनी दूर ऊपर उड़ रहा था। वह बहुत ऊँचे उड़कर जल्दी जल्दी नीचे उतरने लगा। उसकी गति इतनी तेज थी, कि मुझे अपना वजन ही नहीं महसूस हो रहा था। आखिर वह पक्षी एक पत्थर पर बैठा। मैं तुरन्त कमर से बन्धी अपनी पगड़ी उतारने लगा। मुझे डर था कि कहीं वह फिर न उड़ जाय और में उसकी अँगुली में ही अटका रहूँ। मैं अपने को खोलकर, उसकी नजर बचाकर एक तरफ छुप जाने की सोच ही रहा था कि वह पक्षी फिर उड़ा। उसके नाखून में एक बहुत बड़ा साँप लटका दिखाई दिया। मेरे देखते देखते वह पक्षी साँप को लेकर दूर उड़ गया।

मैने जो चारों ओर घूमकर देखा तो मेरे दिल की धड़कन रुक सी गई। क्यों कि जहाँ में पहुँचा था, वह बहुत बड़ी, गहरी घाटी थी। चारों ओर बड़े बड़े पहाड़ थे। उनकी चोटी देखने की कोशिश करता तो जरूर सिर की पगड़ी गिरती। खैर, पहाड़ ऊँचे तो थे, उन पर चढ़ा भी नहीं जा सकता। उनके किनारे ठीक सीधे कटे हुए-से थे। उन पर मनुष्य के लिए चढ़ना सम्भव न था।

उस घाटी को देखकर में रो पड़ा। उन फल के वृक्षों को, नदी-नालों को छोड़कर मुझे यहाँ क्यों आना पड़ा? यहाँ हरी घास का एक पता नहीं, पीने को बूँद भर पानी नहीं। यहाँ से बाहर जाने का रास्ता भी नहीं। इस भयङ्कर प्रदेश में, मूख और प्यास से तड़प तड़पकर मरने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं। एक आफत से निकलने की कोशिश की और उससे भी बड़ी आफत में जा फँसा।

(अभी और है)





दुष्ट की नीयत

किसी जमाने में काशी राजा का एक लड़का हुआ करता था। वह बड़ा दुष्ट था। उसको हर कोई नाग की तरह देखा करता था।

एक दिन राजकुमार अपने नौकरों के साथ गङ्गा में स्नान करने गया। जब वे गङ्गा के पास पहुँचे तो भयङ्कर तूफान आने लगा। उस तूफ़ान में गङ्गा में उतरने के लिए नौकर डर के मारे आगा-पीछा कर रहे थे। परन्तु राज कुमार ने उनको रौब से हुकम दिया-"मुझे तुफान में ही स्नान करना है। मुझे नदी के बीच में ले जाओ।" नौकर तो पहले ही उससे चिढ़े हुए थे। उसको गङ्गा के बीच ले जाकर छोड़ दिया और वे किनारे पर तैर आये। राज महल में जाकर उन्होंने राजा से कहा- "महाप्रभू! राजकुमार हमारे साथ ही गङ्गा में उतरे थे। उन्हें बहुत खोजा, पर उनका पता नहीं लग रहा है।"

इधर, राज कुमार नदी के तीव्र प्रवाह में बहता जाता था। उस तूफान में उसकी आवाज़ सुननेवाला कोई न था। सौभाग्य से उसके हाथ में नदी में बहता एक पेड़ का तना आ गया। वह उस पर चढ़कर लेट गया। कुछ दूर जाने के बाद, एक साँप उस पर आ कूदा। फिर थोड़ी दूर जाने के बाद, अपनी जान बचाने के लिए एक चूहा भी उस पर आ गया। और थोड़ी दूर जाने पर वर्षा की चोट से एक तोता भी, नदी के किनारे के पेड़ पर से पेड़ के तने पर गिरा।

उन चारों प्राणियों को लेकर, वह पेड़ का तना बहुत दूर बढ़ता गया। राज कुमार रास्ते भर मदद के लिये चिल्लाता रहा।

श्री सुबोध कुमार



नदी के मोड़ पर एक सन्यासी छोटी-सी कुटिया में रहा करता था। उस सन्यासी को राजकुमार की आवाज सुनाई दी। मूसलधार वर्षा में बाहर आकर उसने नदी में बहते पेड़ के तने को और उस पर चिपटे राजकुमार को देखा।

तुरन्त वह नदी में कूदा और तैरता तैरता पेड़ के तने को किनारे पर खींच लाया। राजकुमार को अपनी कुटिया में ढोकर ले गया। वह फिर बाहर आकर तने पर पड़े, साँप, चूहे और तोते को भी अन्दर ले गया। क्योंकि वे मूक पशु थे, सन्यासी ने पहले खिला-पिलाकर उनकी सेवा-शुश्रूषा की, फिर उसने राजकुमार की खबर ली।

राजकुमार को यह देख सन्यासी पर बड़ा गुस्सा जाया। क्योंकि उसने उन तुच्छ प्राणियों की पहले परवाह की थी; फिर उसकी। इसलिए वह आगबबूला हो रहा था। रन्तु वह कुछ कर न सकता था। लहू का घूँट पीकर रह गया।

दो दिन की सेवा शुश्रूषा के बाद राज कुमार, साँप, चूहा, तोता सब चङ्गे हो गये। तब तक तूफान भी खतम हो चुका था। साँप ने सन्यासी से आज्ञा माँगते हुए कहा-"स्वामी। मैं पहले जन्म में बहुत बड़ा रईस था। परन्तु बड़ा कञ्जूस पर था। गङ्गा के किनारे फलानी जगह चालीस करोड़ हाये रखकर में मर गया था। बाद में में साँप के रूप में जन्मा और उस धन की रखवाली करता, मैं अब जिन्दगी बसर कर रहा हूँ। सच पूछा जाय तो मुझे उस धन की कोई जरूरत नहीं है। आप जब चाहें, वहाँ आकर मुझे बुलाएँ, तो मैं आप के सामने हाज़िर हो जाऊँगा और वह सारा धन आपको दे दूँगा।"

उसी तरह चूहे ने भी कहा-"स्वामी! जहाँ में रहता हूँ, उस जगह तीस करोड़ रुपया मेरा गड़ा पड़ा है; आप जब कभी आकर मुझे बुलाएँगे तो मैं वह सारा धन आपको दे दूँगा।"

फिर तोते ने कहा-"स्वामी! मेरे पास रुपया-पैसा तो नहीं है; पर आप जितना धान चाहें उतना धान आपको दे सकता हूँ। गङ्गा के किनारे फलाने पेड़ के पास आकर मुझे आवाज़ दीजिये।"

राज कुमार ने जाते जाते कहा-"स्वामी! मेरे राजा बनने पर आप काशी तशरीफ़ लाइये। आप जो चाहेंगे, मैं बिना किसी हिचकिचाहट के आपको दे दूँगा।"

थोडे दिन बीत गये। स्वामी इन चारों की नीयत परखने के लिए निकला। रास्ते में उसने साँप, चूहा, और तोते को आवाज लगाई। वे अपनी अपनी जगह से बाहर आये और अपने वचन के अनुसार धन, और धान देने के लिए तैयार हो गये। परन्तु सन्यासी ने कहा-"मैं किसी और काम पर जा रहा हूँ। सोचा कि तुम्हें भी देखता जाऊँ। अपना धन और धान अपने पास ही रखो। जब जरूरत होगी तब ले



लूँगा।" यों कहकर वह सन्यासी काशी की ओर चलता गया।

इस बीच में काशी का राजा मर चुका था और राजकुमार उसकी जगह पर राजगद्दी पर बैठ गया था। जुलूस में जाते हुए नये राजा ने दूरी पर सन्यासी को देखा। उसने सोचा कि कह उससे कुछ माँगने आया है। उसने अपने सिपाहियों से कहा-"वह जो ढोङ्गी, चोर सन्यासी दिखाई दे रहा है, उसको पकड़कर हाथ पैर बाँध दो और हर गली की नुकड़ पर उसे खड़ा कर लाठियों से खूब पीटो। फिर ले जाकर उसका सिर काट दो।

हुक्म के मुताबिक सिपाहियों ने सन्यासी के हाथ-पैर बाँध दिये। हर गली की नुक्कड़ पर उसको पीटते-पीटते घसीटने लगे। सन्यासी सब जान गया। जब सिपाही उसे पीटते तो वह चिल्लाता-"मानव से पेड़ का तना भला।"

इस अजीब सज़ा को देखने के लिए, जो लोग, सन्यासी के चारों ओर इकट्ठे हो गये थे, वे उसकी यह बात सुनकर चकित थे। "आप कौन हैं? आपने क्या कसूर किया है, जिससे कि आपको यह सजा



मिल रही है ! 'मनुष्य से भला पेड़ का तना' कहने का क्या मतलब है?" सन्यासी से उन्होंने बार बार पूछा। सन्यासी ने जो कुछ गुज़रा था, उन्हें सुनाते हुए कहा-"जब आपका राजा गङ्गा में डूबकर मर रहा था तो एक पेड़ के तने ने उनकी जान बचाई थी। मैंने राजा के प्राण बचाये, और वे उसके लिये जैसा मेरा उपकार कर रहे हैं, वे आप देख ही रहे हैं।"

इस अन्याय को जनता सहन न कर सकी और तुरन्त खौल उठी और अपने दुष्ट राजा को सड़क के बीचों-बीच दिन दहाड़े मारने के लिये उतावला हो उठी। वे तो पहले ही राजा से क्रुद्ध थे। परन्तु सन्यासी ने उन्हें समझा-बुझाकर फिर एक बार राजा की जान बचाई।

राजा ने सन्यासी के चरण पकड़कर कहा-"स्वामी! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अब से आप मेरे मुख्य मन्त्री बनिये, और मुझे सिखाइये कि कैसे रहना चाहिये और कैसे राज्य-पालन करना चाहिये।" सन्यासी मन्त्री का कार्य करने के लिए मान गया। परन्तु सारे राज्य में अराजकता फैली हुई थी। खजाना खाली था। जनता के पास खाने-पीने की सामग्री भी न थी। सन्सासी जान गया कि राजा की मूर्खता के कारण राज्य की बुरी हालत हो गई थी। तुरन्त उसने गङ्गा के किनारे रहनेवाले, साँप, चूहे और तोते के बुलवाया। उनको धन और धान, अपने वचन के अनुसार राजा के लिये देने के लिये कहा और उनके काशी नगर में रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध करवाया। तब से राजा अपना अहङ्कार भूल गया और सन्यासी की सलाह पर सुखपूर्वक राज्य का परिपालन करने लगा।



CHANDAMAMA (Hindi) OCTOBER 1956 Regd. No. M. 8482

